सनातन धर्म का कोढ़ है जाति प्रथा

राम पुनियानी

हिन्दू धर्म का कोई पैगम्बर नहीं है और ना ही उसकी कोई एक किताब है. यहां तक कि 'हिन्दू' शब्द का इस्तेमाल हिन्दू धर्मग्रंथों में कहीं नहीं किया गया है. यही कारण है कि विभिन्न टीकाकारों और सुधारकों ने हिन्दू धर्म और उसके सिद्धांतों की अपने-अपने ढंग से व्याख्या की है. यहां तक कि कुछ लोग इसे धर्म न बताते हुए जीवन पद्धति की संज्ञा देते हैं. सच यह है कि हिन्दू धर्म कई विविध और कुछ मामलों में विरोधाभासी सिद्धांतों का मिश्रण है, जिन्हें मोटे तौर पर दो भागों में बांटा जा सकता है - ब्राम्हणवादी (जिसका आधार हैं वेद, मनुस्मृति और जातिगत व लैंगिक पदक्रम) और श्रमण (नाथ, तंत्र, भक्ति, शैव व सिद्धांत परंपराएं).

सनातन धर्म से आशय है कोई ऐसा धर्म जो शाश्वत है अर्थात जो हमेशा से था. 'धर्म' शब्द को भी परिभाषित करना सहज नहीं है. इस शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं, जैसे धर्म द्वारा निर्धारित कर्तव्य या आध्यात्मिक व्यवस्था अथवा पवित्र आचार-विचार या फिर सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का संकलन. शशि थरूर अपनी पुस्तक 'वाय आई एम ए हिन्दू' में लिखते हैं कि "धर्म वह है जिसका हम पालन करते हैं". इन जटिलताओं को परे रख कर हम इतना तो कह ही सकते हैं कि सनातन धर्म शब्द का प्रयोग हिन्दू धर्म, विशेषकर लैंगिक व जातिगत ऊंच-नीच पर आधारित उसके ब्राम्हणवादी संस्करण, के लिए किया जाता रहा है. यही कारण है कि अंबेडकर का मानना था कि हिन्दू धर्म दरअसल ब्राम्हणवादी धर्मशास्त्र है. हिन्दू धर्म हिन्दुत्व या हिन्दू राष्ट्रवादी राजनीति, जो मनुस्मृति और तदानुसार जातिगत ऊँच-नीच को मान्यता देती है, का मूलाधार है. एक तरह से आज सनातन धर्म को जातिगत ऊँच-नीच का पर्याय मान लिया गया है.

हमें उदयनिधि स्टालिन (स्टालिन जूनियर या एसजे) के सनातन धर्म के उन्मूलन के आव्हान को इस पृष्ठभूमि में समझना होगा. एसजे, पेरियार की परंपरा में रचे-बसे हैं. पेरियार ने आत्मसम्मान आंदोलन शुरू किया था जो जातिगत समानता और पितृसत्तात्मकता के उन्मूलन पर केन्द्रित था. पेरियार ब्राम्हणवादी नियमों और प्रथाओं, जिनका समाज में जबरदस्त बोलबाला था, के कटु आलोचक थे. पेरियार के पहले अंबेडकर की मौजूदगी में उनके साथी सहस्त्रबुद्धे ने मनुस्मृति का दहन किया था. अंबेडकर का मानना था कि मनुस्मृति जातिगत असमानता को वैधता प्रदान करती है. ब्राम्हणवाद, जिसे सनातन धार्मिक मूल्यों का संकलन बताया जाता है, की प्रभुता से उद्वेलित हो अंबेडकर ने घोषणा की थी कि, "मैं एक हिन्दू के रूप में पैदा हुआ था. यह मेरे हाथ में नहीं था. परंतु मैं एक हिन्दू के रूप में मरूंगा नहीं". एसजे ने कहा कि "सनातन धर्म वह सिद्धांत है जो लोगों को जाति और धर्म के नाम पर बांटता है..." (द टाईम्स ऑफ इंडिया, 4 सितंबर 2023).

एसजे ने केवल वही दुहराया है जो पेरियार और अंबेडकर ने अलग शब्दों में कहा था. 'सनातन धर्म' शब्द के इस्तेमाल के चलते एसजे के वक्तव्य को किस तरह तोड़ा-मरोड़ा गया यह भाजपा के प्रवक्ता अमित मालवीय की ट्वीट से जाहिर है. मालवीय ने एक्स पर लिखा, "तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एमके स्टालिन के पुत्र और डीएमके सरकार में मंत्री उदयनिधि स्टालिन ने सनातन धर्म की तुलना मलेरिया और डेंगू से की है.... संक्षेप मे वे यह आव्हान कर रहे हैं कि भारत की 80 प्रतिशत आबादी, जो सनातन धर्म की अनुयायी है, का कत्लेआम कर दिया जाए." यहां मालवीय न केवल एसजे के बयान को तोड़-मरोड़ रहे हैं वरन् वे इस बात की पुष्टि भी कर रहे हैं कि आज सनातन धर्म और हिन्दू धर्म एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं.

एसजे ने जाति के उन्मूलन की बात कही है ना कि लोगों के. जब अंबेडकर "जाति के विनाश" की बात कहते हैं तो वे यह नहीं कह रहे होते हैं कि हिन्दुओं का नरसंहार होना चाहिए. अंबेडकर का आशय और एसजे का आव्हान एक ही हैं. भाजपा के नेता जानबूझकर एसजे के बयान को तोड़-मरोड़ रहे हैं. ऐसा इसलिए क्योंकि एसजे का डीएमके, इंडिया गठबंधन का हिस्सा है. अमित शाह आमसभाओं में कह रहे हैं कि कांग्रेस ने कभी भारतीय संस्कृति का सम्मान नहीं किया और यह भी कि एसजे का आव्हान 'हेट स्पीच' है. सच यह है कि जाति व्यवस्था के विनाश की कामना करना या असमानता पर आधारित किसी भी व्यवस्था का विरोध करना 'हेट स्पीच' नहीं हो सकता. एसजे ने वही कहा जो अंबेडकर और पेरियार ने कहा था. यहां मुख्य मुद्दा यह है कि ब्राम्हणवादी हिन्दू धर्म ने सनातन धर्म का चोला ओढ़ लिया है.

सच यह भी है कि अलग-अलग दौर में एक ही शब्द के अलग-अलग अर्थ होते हैं. जब गांधीजी देश को एक करने और अछूत प्रथा का निवारण करने का प्रयास कर रहे थे तब उन्होंने स्वयं को सनातन धर्म और हिन्दू धर्म का अनुयायी बताया था. सन् 1932 के बाद कुछ सालों तक गांधीजी का जोर अछूत प्रथा के उन्मूलन और दलितों को मंदिरों में प्रवेश दिलाने पर था. अतीत में बौद्ध और जैन धर्मों को भी सनातन बताया जाता था. आज आरएसएस, जो ब्राम्हणवाद को राष्ट्रवाद से जोड़ता है, हिन्दू धर्म के लिए सनातन शब्द के प्रयोग को बढ़ावा दे रहा है. यही कारण है कि एसजे को सनातन धर्म शब्द का प्रयोग करना पड़ा. जहां तक 'हेट स्पीच' का सवाल है, एसजे ने केवल उन मूल्यों के उन्मूलन की बात कही है जो जातिगत ऊँच-नीच को औचित्यपूर्ण और वैध ठहराते हैं. इसे किसी भी तरह से हेट स्पीच नहीं कहा जा सकता.

भाजपा के नेता और प्रवक्ता उदयनिधि के वक्तव्य के बहाने कांग्रेस और इंडिया पर बिना किसी आधार के हमले कर रहे हैं. इस आरोप में कोई दम नहीं है कि कांग्रेस ने भारतीय संस्कृति का सम्मान नहीं किया. यह केवल सियासी फायदे के लिए तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने का उदाहरण है. कांग्रेस तो उस जनांदोलन की धुरी थी जिसने देश के सभी निवासियों को भारतीय की सांझा पहचान के झंडे तले लाने का प्रयास किया. यह आंदोलन भारत के सांस्कृतिक मूल्यों का पूरा सम्मान करता था परंतु इसके साथ ही वह समाज में बदलाव और सुधार भी लाना चाहता था.

अमित शाह कहते हैं, "आप (विपक्ष) सत्ता हासिल करना चाहते हैं. पर किस कीमत पर? आप सनातन धर्म और इस देश की संस्कृति और इतिहास का असम्मान करते आ रहे हैं". तथ्य यह है कि राष्ट्रीय आंदोलन ने भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ पहलुओं को संरक्षित किया. जैसा कि नेहरू लिखते हैं, "भारत एक ऐसी स्लेट थी जिसके ऊपर एक के बाद एक कई परतों में नई-नई बातें लिखी गईं परंतु किसी नई परत ने न तो पिछली परत को पूरी तरह से छुपाया और न मिटाया." दरअसल समस्या इंडिया गठबंधन की सदस्य पार्टियों की वजह से नहीं है. समस्या भाजपा एंड कंपनी की है जिनके लिए भारतीय संस्कृति का अर्थ है ब्राम्हणवाद. जाति प्रथा के उन्मूलन में पहले ही बहुत देर हो चुकी है. अंबेडकर, पेरियार और गांधीजी ने भी इस दिशा में सघन प्रयास किए और उन्हें कुछ हद तक सफलता भी मिली परंतु यह प्रक्रिया अधबीच रूक गई और पिछले तीन दशकों से तो हम पीछे की तरफ जा रहे हैं. शब्दावली को लेकर बेसिर-पैर के विवाद खड़े करने की बजाए हमें जाति के विनाश के लिए काम करना चाहिए. सनातन शब्द पहले बौद्ध और जैन धर्मों के लिए इस्तेमाल होता था. बाद में वह मनुस्मृति का हिस्सा बना और आज वह ब्राम्हणवादी हिन्दू धर्म का प्रतीक बन गया है. जरूरत इस बात की है कि हम बाल की खाल निकालने की बजाए और इस मुद्दे को राजनैतिक बहसबाजी का विषय बनाने की बजाए ऐसे सुधारों की ओर बढ़ें जिनसे हम भारत के संविधान के मूल्यों के अनुरूप समानता पर आधारित समाज का निर्माण कर सकें.

वैसे भी एसजे का बयान इंडिया गठबंधन का आधिकारिक वक्तव्य नहीं है. भाजपा इसे चुनावी मुद्दा बनाएगी या नहीं यह तो आने वाला समय ही बताएगा परंतु हम सबको यह याद रखना चाहिए कि भाजपा ने कर्नाटक चुनाव में बजरंगबली को एक बड़ा मुद्दा बनाया था और उसके बावजूद मुंह की खाई थी.

(अंग्रेजी से रूपांतरण अमरीश हरदेनिया; लेखक आईआईटी मुंबई में पढ़ाते थे और सन 2007 के नेशनल कम्यूनल हार्मोनी एवार्ड से सम्मानित हैं)

नये संविधान की मांग आखिर क्यों ?

राम पुनियानी

डॉ. बिबेक देबरॉय, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की आर्थिक सलाहकार परिषद् के मुखिया हैं। जाहिर है कि वे सत्ता के केंद्र के बहुत नज़दीक है-शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों अर्थों में। हाल में (15 अगस्त, 2023), उनका लेख देश के एक शीर्ष समाचारपत्र में प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने देश के वर्तमान संविधान के बने रहने पर प्रश्न उठाया। उनके अनुसार, आज का संविधान वह संविधान नहीं है जिसे हमने स्वाधीनता के समय अपनाया था क्योंकि उसमें अनेक संशोधन हो चुके हैं। उनका यह कहना है कि चूंकि कार्यपालिका संविधान के मूलभूत ढांचे में कोई बदलाव कर सकती और चूंकि संविधान अब बहुत पुराना हो गया है, इसलिए हमें नया संविधान बनाना चाहिए। वे यह भी कहते हैं कि यह संविधान औपनिवेशिक विरासत है और वे इसके कई प्रावधानों पर प्रश्न उठाते हैं जिनमें समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, न्याय, समानता और स्वतंत्रता जैसे मूल्यों की स्थापना और संरक्षण से जुड़े प्रावधान शामिल हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय (पीएमओ) ने देबरॉय की राय से आधिकारिक रूप से अपने को अलग कर लिया है परन्तु भारतीय संविधान की उपयोगिता को शंका के घेरे में डालने और उसका विरोध करने का उद्देश्य पूरा हो गया है।

इसके पहले से भी दक्षिणपंथी चिन्तक और नेता यह कहते आये हैं कि भारत का संविधान गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट 1935 पर आधारित है, औपनिवेशिक विरासत है और भारतीय मूल्यों को प्रतिबिंबित नहीं करता। सच तो यह है कि दक्षिणपंथी हिन्दू राष्ट्रवादियों को यह संविधान कभी नहीं भाया। यह संविधान गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट 1935 की तर्ज पर नहीं बना है। यह संविधान की मसविदा समिति के अध्यक्ष डॉ बी.आर. अम्बेडकर ने नेतृत्व में करीब तीन वर्ष तक चली लम्बी बहसों और कठिन श्रम का नतीजा है। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद और उसके अधिकांश सदस्य भारत के औपनिवेशिकता विरोधी संघर्ष में रचे-बसे थे। और इसी संघर्ष ने भारत के एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया के शुभारम्भ में महती भूमिका निभाई थी।

बहुलतावादी और समावेशी भारत के पैरोकारों के विपरीत, धार्मिक राष्ट्रवादियों ने इस संघर्ष से दूरी बनाए रखी और उन्होंने उन मूल्यों का भी विरोध किया जो इस संघर्ष से उपजे थे। सन 1949 के 30 नवम्बर को संविधान सभा ने संविधान को पारित किया। इसके तीन दिन बाद, आरएसएस के मुखपत्र 'द आर्गेनाइजर' ने उसे ख़ारिज करते हुए 'मनुस्मृति' को संविधान के तौर पर अपनाए जाने की वकालत करते हुए एक सम्पादकीय लिखी। इसमें कहा गया था, "किन्तु हमारे संविधान में प्राचीन भारत में हुए अनूठे संवैधानिक विकास का कोई उल्लेख नहीं हैं। मनु द्वारा विरचित नियमों का रचनाकाल स्पार्टा और पर्शिया में रचे गए संविधानों से कहीं पहले का है। आज भी मनुस्मृति में प्रतिपादित नियम पूरे विश्व में प्रशंसा पा रहे हैं और इनका सहज अनुपालन किया जा रहा है। किंतु हमारे संवैधानिक पंडितों के लिए यह सब अर्थहीन है"।

हिन्दू दक्षिणपंथ के उभार के साथ संविधान का विरोध बढ़ने लगा। अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार के 1998 में सत्ता में आने के बाद संविधान की 'समीक्षा' के लिए वैंकटचलैया आयोग का गठन किया गया। परंतु इस आयोग का इतना कड़ा विरोध हुआ कि सरकार को उस पर अमल करने का इरादा त्यागना पड़ा।

संविधान के प्रति विरोध अलग-अलग तरीकों और मंचों से किया जाता रहा है। के. सुदर्शन ने आरएसएस का मुखिया बनने के बाद घोषणा की कि भारतीय संविधान पश्चिमी मूल्यों पर आधारित है और इसके स्थान पर भारतीय पवित्र पुस्तकों, जिनमें मनुस्मृति भी शामिल है, पर आधारित संविधान बनाया जाना चाहिए। उन्होंने कहा "हमें नया संविधान बनाने में सकुचाना नहीं चाहिए क्योंकि हम इसे पहले ही सौ से अधिक बार संशोधित कर चुके हैं"। उन्होंने यह भी कहा कि फ्रांस अपने संविधान का अब तक चार बार पुनरीक्षण कर चुका है। उन्होंने कहा कि संविधान कोई पवित्र ग्रंथ नहीं है बल्कि वह हमारे देश के समक्ष उपस्थित अधिकांश समस्याओं की जड़ है।

समय-समय पर भगवा ब्रिगेड के अलग-अलग सदस्य इसी तरह की बातें कहते रहे हैं। हाल में जब विपक्ष ने इंडिया नाम से एक गठबंधन बनाया तब इस समूह के कई नेताओं ने इस आधार पर इसका विरोध किया कि भारत को इंडिया का नाम अंग्रेजों ने दिया था। भाजपा के एक राज्यसभा सदस्य नरेश बंसल ने तो संविधान में इस शब्द के उपयोग पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कहा कि यह शब्द भारत की गुलामी का प्रतीक है। संघ के महासचिव दत्तात्रेय होसबोले का मानना है कि भारतीयों के दिलोदिमाग को औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त करना आवश्यक है। "हमारे देश में यूरोपीय विचारों, प्रणालियों, आचरण और विश्वदृष्टि का कई दशकों से बोलबाला रहा है। स्वतंत्र भारत इनसे मुक्ति नहीं पा सका है।"

देबराय और संघ परिवार संविधान के विरोध के मुद्दे पर एकमत हैं। जहां संघ परिवार संविधान के 'पश्चिमी चरित्र' पर प्रश्न उठाता रहा है वहीं देबराय इससे भी आगे बढ़कर स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद आदि जैसे मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं। इससे यह साफ है कि संघ परिवार को असली परेशानी किससे है। भारतीय संविधान के औपनिवेशिक चरित्र की दुहाई देना ठीक वैसा ही है जैसे पश्चिम एशियाई देशों में मुस्लिम ब्रदरहुड जैसी संस्थाएं स्वतंत्रता और समानता के मूल्यों का इस आधार पर विरोध कर रही हैं कि वे पश्चिमी हैं। देबराय और उनके जैसे अन्य लोग इस बात से दुःखी हैं कि हमारा संविधान विभिन्न जातियों, धर्मों और दोनों लिंगों के लोगों को समानता देता है।

संघ परिवार मनुस्मृति के युग को भारत का स्वर्णकाल बताता है क्योंकि उस काल में लैंगिक और जातिगत पदक्रम को धार्मिक और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि औपनिवेशिक शासन में हमारे समाज के ढांचे में व्यापक परिवर्तन हुए और लैंगिक व जातिगत पदक्रम की समाज पर पकड़ कमजोर हुई। यही वह वक्त था जब श्रमिकों ने अपने संगठन बनाए (नारायण मेघाजी लोखंडे, कामरेड सिंगारवेल्लू)। इसी दौर में भगतसिंह जैसे नेताओं ने शासक वर्ग द्वारा आम लोगों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई और यह साफ कर दिया कि इस शोषण को हमें खत्म करना होगा। औपनिवेशिक शासनकाल को हम केवल स्याह-सफेद के चश्मे से नहीं देख सकते। इससे देश का कुछ भला भी हुआ और कुछ बुरा भी। औपनिवेशिक ताकतों ने निःसंदेह देश को जमकर लूटा परंतु उन्होंने ऐसी संस्थाएं भी खोलीं जो महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार देतीं थीं। संघ परिवार और प्रधानमंत्री के आर्थिक सलाहकार वर्तमान संविधान के स्थान पर नए संविधान के निर्माण के पक्ष में भले ही अनेक तर्क दे रहे हों परंतु उन्हें सबसे अधिक परेशानी समानता के मूल्य से है जिसके पैरोकारों में भगतसिंह और अंबेडकर जैसी विभूतियां थीं और जो हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के मार्गदर्शक सिद्धांतों में से एक था।

सन् 1990 तक भारत ने समानता की स्थापना के लिए संघर्ष किया। इस संघर्ष की धुरी था हमारा संविधान और इसमें मददगार थीं नेहरू की देश को आधुनिक बनाने की नीतियां। अब हम रिवर्स गेयर में चल रहे हैं। मंदिर और गाय राजनीति के केन्द्रक बन गए हैं और सभ्यतागत मूल्यों के नाम पर ब्राम्हणवादी मूल्यों को देश पर लादा जा रहा है। इससे हम वह सब खो बैठेंगे जो हमने दुनिया के सबसे बड़े जनांदोलन अर्थात भारत के स्वाधीनता आंदोलन से हासिल किया था।

संविधान का विरोध दरअसल देश को उस युग में वापिस ढकेलने की कवायद है जिसमें जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर असमानता को धर्म की स्वीकृति हासिल थी।

(अंग्रेजी से रूपांतरण अमरीश हरदेनिया)